द्वितीय अध्याय

भारतीय शास्त्रीय संगीत–परिचय

द्वितीय अध्याय

2.भारतीय शास्त्रीय संगीत परिचय

'संगीत' शब्द मे 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'मैं' धातु के प्रयोग के साथ 'क्त' प्रत्यय जोड़कर बना है। 'सम' का अर्थ है, 'अच्छा' या 'उत्तम' इसके साथ 'गै' धातु 'गाम' या गीत के अर्थ में तथा 'क्त' प्रत्यय करने के अर्थ में लिया गया है। जिसका अर्थ सम्+गीत='संगीत'= उत्तम या अच्छा गीत है। 'सं' के उच्चारण में ही साहित्य एवं संगीत दोनों का समावेश है। 'गीत' शब्द की उत्पत्ति 'ग' धातु से होती है जिसका अर्थ गीत अथवा गा होता है। गान के विषयों में पं. रामामात्य ने स्वरमेल कलानिधि में लिखा है-

यत्तुवाग्गेय कारेण रचितं लक्षणान्वित्म

देशी रागादिभिः प्रोक्त तद्गानंग जनरंजनम् ।।

स्वरमेल कलानिधि

अर्थात् जिसे ग्रन्थकारों ने नाना प्रकार के लक्षणों से विभूषित किया है, जिसमें देशी रागों का समावेश होता है तथा है जो जनरंजक है उसे गान कहते हैं अब दोनों को जोड़ देने से सम्यक गान अर्थात् अच्छा+गीत संगीत कहा जाता है।

भारत में, प्राचीन काल से ही विभिन्न विद्याओं और कलाओं के लिए कोई न कोई देवी या देवता निश्चित कर दिए गए हैं। इस विचारधारा के अनुसार, प्रत्येक कला या विद्या को एक विशेष देवी या देवता से जोड़ा गया है, जिनकी पूजा और स्मरणा के माध्यम से उन विद्याओं और कलाओं को महत्ता दी गई है। ऐसे ही एक प्रमुख देवी हैं माँ सरस्वती, जिन्हें विद्या, बुद्धि, शिक्षा और संगीत की देवी के रूप में पूजा जाता है। सरस्वती को वीणा के साथ दर्शाया जाता है, जो उनकी संगीत संबंधितता को प्रतिष्ठित करता है।

शोधकर्ताओं के अनुसार, संगीत का जन्म कई हजार वर्ष पूर्व हुआ था, विभिन्न प्राचीन मूर्तियों, शिलालेखों और ऐतिहासिक प्रमाणों से समर्थन मिलता है। इसके अलावा, भारतीय संगीत के अत्यंत प्राचीन रूपों का उल्लेख वेदों, उपनिषदों, पुराणों, रामायण, और महाभारत में भी मिलता है। यह सब अंकित करता है कि संगीत भारतीय संस्कृति का अभिन्न हिस्सा रहा है और इसका विकास बहुत प्राचीन समय से ही हुआ है। इसके साथ ही, इतिहासकारों का मत है कि भारतीय संगीत का मूल द्रविड़ संगीत से है। द्रविड़ समुदाय के लोगों ने संगीत के क्षेत्र में गहरा ज्ञान और उसका प्रयोग किया। इसके परिणामस्वरूप, द्रविड़ संगीत और उसके तत्वों ने भारतीय संगीत को आधारित किया और उसकी विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस रूप में, प्राचीन खण्डहरों में मिले संगीत संबंधित चित्र, मूर्तियाँ और शिलालेख भी भारतीय संगीत के प्राचीनतम

रूपों के बारे में हमें जानकारी देते हैं। ये खंडहर और प्राचीन साक्षात्कार उस समय की श्रेष्ठता और संगीतिक योग्यता को प्रकट करते हैं, जो अन्य प्राचीन सभ्यताओं के संगीत से उत्तम माने जाते हैं।[1]

आधुनिक युग में 'संगीत' शब्द को अंग्रेजी के Music शब्द का पर्यायवाची माना गया है परन्तु Music का अर्थ केवल गायन वादनसे है तथा संगीत के शब्द के अन्तर्गत गायन-वादन तथा नर्तन तीनों का ही समावेश माना जाता है। विभिन्न विद्वानों के द्वारा संगीत की परिभाषाएं- विभिन्न विद्वानों व दर्शनिकों के मतानुसार 'संगीत' की परिभाषा इस प्रकार से है-

लालमणि मिश्र के अनुसार- संगीत हृदय की वाणी है जो अपनी अभिव्यक्तिकरण के लिए शब्दों केव्यापार के सहारे की अपेक्षा नहीं रखती, संगीत सुकुमार भावनाओं की सुललित अभिव्यक्ति है।

एडीसन के अनुसार- इस पृथ्वी पर स्वर्ग से मिली कोई चीज है तो वह संगीत है।

प्लेटो के अनुसार मनुष्य के हृदय के अन्दर जो क्रूरता पायी जाती है, उसे संगीत के द्वारा दूर किया जा सकता है।

2:1 उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत

भारतीय शास्त्रीय संगीत एक समृद्ध परंपरा है जिसकी उत्पत्ति दक्षिण एशिया में हुई और अब इसे दुनिया के सभी कोनों में पाया जा सकता है। इसकी उत्पत्ति 6000 साल पहले पवित्र वैदिक शास्त्रों में हुई थी, जहां मंत्रों ने संगीत स्वर और लयबद्ध चक्रों की एक प्रणाली विकसित की थी। इस तरह, भारतीय शास्त्रीय संगीत प्रकृति से बहुत निकटता से जुड़ा हुआ है, जो 'राग' या संगीतमय मनोदशा और कई समय चक्र या 'ताल' बनाने के लिए मौसम और दिन के समय सहित प्राकृतिक घटनाओं से प्रेरणा लेता है जिन्हें आगे संहिताबद्ध किया गया है। निश्चित हैं लेकिन अधिकांश संगीत नोट्स और गणित की संरचना के भीतर कामचलाऊ है। यह संगीत को एक सहज स्वतंत्रता देता है जहां प्रत्येक कलाकार और प्रत्येक प्रदर्शन को पूरी तरह से अद्वितीय होना सुनिश्चित किया जाता है।

मनुष्य ने युगों से अपनी आत्मा की क्रियाशीलता को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है, जो कि कला के माध्यम से सांसारिकता के आगे की तलाश है। काव्य, चित्रकला और अन्य दृश्य कलाओं का विकास पत्थर, पत्तों तथा कागज पर हुआ है। संगीत का संबंध श्रवण से है, ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। अत: प्राचीन समय के संगीत को आज सुन पाना संभव नहीं है । ऐसे सांस्कृतिक अन्तर्संबंधों की विविधता के बावजूद, हमारा संगीत तत्त्वत: रागात्मक रहा है। इसमें एक स्वर दूसरे स्वर के बाद आता है और प्रभाव की एक सतत

1. गर्ग लक्ष्मी नारायण- निबंध / पृष्ठ-183-185

इकाई का सृजन होता है, जबकि स्वर संगति में संगीतात्मक स्वर एक-दूसरे पर अध्यारोपित किए जाते हैं। हमारे शास्त्रीय संगीत ने स्वरमाधुर्य के गुण को बनाए रखा है ।

आज हम शास्त्रीय संगीत की दो पद्धतियों को पहचानते हैं: हिन्दुस्तानी एवं कर्नाटक, कर्नाटक संगीत कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु और केरल तक सीमित है। शेष देश के शास्त्रीय संगीत का नाम हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत है। नि:संदेह, कर्नाटक और आन्ध्र में कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहां हिन्दुस्तानी शास्त्रीय पद्धति का भी अभ्यास किया जाता है। कर्नाटक ने अभी हाल ही में हमें हिन्दुस्तानी शैली के कुछ अति विशिष्ट संगीतकार दिए हैं। सामान्य रूप से यह विश्वास किया जाता है कि तेरहवीं शताब्दी से पूर्व भारत का संगीत कुल मिलाकर एकसमान है, बाद में जो दो पद्धतियों में विभाजित हो गया था।

वर्तमान भारतीय संगीत का प्राचीन समय से विकास हुआ है। लगभग प्रत्येक जनजाति या व्यक्ति ने इस विकास में अपने हिस्से का योगदान दिया है। अत: जिसे अब हम राग कहते है वह जनजातीय या लोक धुन के रूप में प्रारम्भ हुआ होगा । वेदों के गुणगान करने की रागात्मक प्रवृत्तियों से भारतीय संगीत को प्रारम्भ करना सामान्य सी बात है। प्राचीनतम संगीत जिसमें व्याकरण निहित था, वैदिक था ।

वेदों के गुणगान करने की रागात्मक प्रवृत्तियों से भारतीय संगीत को प्रारम्भ करना सामान्य सी बात है। प्राचीनतम संगीत जिसमें व्याकरण निहित था, वैदिक था । नि:संदेह, ऋग्वेद को प्राचीनतम कहा जाता है : लगभग 5000 वर्ष पुराना । ऋग्वेद के गान को ऋचाएं कहते हैं। यजुर्वेद भी एक धार्मिक गुणगान है लेकिन उन बीते हुए दिनों का उत्तरी और दक्षिणी भारत में वास्तविक संगीत इस प्रकार का नहीं हो सकता था । अनार्य होते थे, जिनकी अपनी कला थी, उदाहरण के लिए, भारत के पूर्वी क्षेत्र का संथाल संगीत उनके सामने से ही होकर गुजर गया होगा। जबकि मतभेद स्पष्ट हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है कि लोगों के इस संगीत ने, जिसे अब हम हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत कहते हैं, की रचना में अपना योगदान दिया होगा । भारतीय संगीत के इतिहास में भरत का नाट्यशास्त्र एक अन्य महत्वपूर्ण सीमाचिह्न है । यह माना जाता है कि इसे दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व और दूसरी शताब्दी ईसवी सन् के बीच किसी समय लिखा गया होगा। कुछ विद्वानों को तो यह संदेह है कि क्या यह मात्र एक लेखक की रचना (ग्रंथ) है तथा यह एक सार-संग्रह रहा होगा जिसका रूपान्तर हमें उपलब्ध है । नाट्यशास्त्र एक व्यापक रचना या ग्रंथ है जो प्रमुख रूप से नाट्यकला के बारे में है लेकिन इसके कुछ अध्याय संगीत के बारे में हैं। इसमें हमें सरगम, रागात्मकता, रूपों और वाद्यों के बारे में जानकारी मिलती है। तत्कालीन समकालिक संगीत ने दो मानक सरगमों की पहचान की। इन्हें ग्राम कहते थे । शब्द ग्राम ही संभवत: किसी समूह या सम्प्रदाय उदाहरणार्थ एक गांव के विचार से लिया गया है। यही संभवत: स्वरों की ओर ले जाता है जिन्हें ग्राम कहा जा रहा है । इसका स्थूल रूप से सरगमों के रूप में

अनुवाद किया जा सकता है। उस समय दो ग्राम प्रचलन में थे। इनमें से एक को षडज ग्राम और अन्य को मध्यम ग्राम कहते थे। दो के बीच का अन्तर मात्र एक स्वर पंचम में था। अधिक सटीक रूप से कहें तो हम यह कह सकते हैं कि मध्यम ग्राम में पंचम षडज ग्राम के पंचम से एक श्रुति नीचे था । इस प्रकार से श्रुति मापने की एक इकाई है या एक ग्राम अथवा एक सरगम के भीतर विभिन्न क्रमिक तारत्वों के बीच एक छोटा-सा अन्तर है। सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए, इनकी संख्या बाइस बताई जाती है। जहां तक व्यावहारिक गणना का संबंध है, यह मात्र इसी के लिए है। जैसा कि हम कहेंगे कि एक सप्तक में सात स्वर हैं- सा से ऊपरी सा या तारसप्तक के सा तक, लेकिन वास्तव में भारतीय संगीत में प्रयोग में लायी जाने वाली, श्रुतियों की संख्या असीम है।

पाश्चात्य विद्वान फ्रायड के अनुसार- "संगीत की उत्पत्ति एक शिशु के समान मनोविज्ञान के आधार पर हुई हैं जिस तरह बालक रोना, हंसना, चिल्लाना आदि क्रियायें मनोविज्ञान की आवश्यकता स्वयं सीख जाता है, उसी प्रकार संगीत का प्रादुर्भाव मानव में मनोविज्ञान के आधार पर स्वयं हुआ।[1]

इस प्रकार संगीत के जन्म को लेकर भिन्न-भिन्न मत मिलते है परन्तु एतिहासिक तथ्य अभी प्राप्त नहीं है संगीत को इतिहास की सभ्यता और संस्कृति के विकास से अलग नहीं किया जा सकता।

"In ancient Indian culture put music on a special plane. Music was viewed as a creation of divine agency. It was finest of the arts. It was the altimate synthesis of intution and expression and it was given a status of 'Adhyatma Vidya'a pathway of self-realization."[2]

भारतीय शास्त्रीय संगीत आम तौर पर एक मौखिक परंपरा में पारित किया जाता है जहां छात्र अपने 'गुरु' के साथ कई साल बिताते हैं, एक बहुत ही विशेष, आध्यात्मिक बंधन विकसित करते हैं, संगीत के सभी पहलुओं को दार्शनिक और नैतिक सिद्धांतों के साथ आत्मसात करते हैं जो उन्हें जीवन के लिए आकार देते हैं।[3]

2:1:1- गायन शैलियाँ

ध्रुवपद- आधुनिक प्रबंध गायन (शैली) में ध्रुवपद का स्थान मुख्य है, ध्रुव शब्द का अर्थ है अचला। भरत के नाट्यशास्त्र में 'ध्रुवा' शब्द मिलता है। यह ध्रुवा गीत छंद में निबद्ध होते थे। इसके 18 अंगों का भरत ने वर्णन

1. शर्मा, डॉ० स्वतंत्र/भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण/पृष्ठ-13
2. शर्मा,डॉ० सुनीता/भारतीय संगीत का इतिहास (आध्यात्मिल एवं दार्शनिक)/पृष्ठ-15
3. https://sangeetnatak.gov.in/sections/music

किया है। ध्रुवा एक काव्य, स्वर तथा छंद से बद्ध रचना थी जिसके सुनिश्चित अंग थे तथा उस गीत में यति, वर्ण, अलंकार, ग्रह आदि का संबंध अखंड रूप से सुनियोजित था। बृहद्देशी में इसे 'चोक्षा' तथा शारंगदेव ने इसे 'शुद्धा' गीति कहा ऐसा माना जाता है कि ध्रुवा गीतों में समय के अनुसार परिवर्तन हुए तथा ध्रुवपदों का विकास हुआ। मध्यकाल में ध्रुवपद को उच्च श्रेणी का गायन माना जाता था। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने (15 वीं शताब्दी) इस शैली को विशेष दर्जा प्रदान किया तथा इसका पुनः स्थापित किया। ध्रुवपद गायन को श्रेष्ठ समझा जाता था अतः इसके गायकों को 'कलावंत' कहा जाता था। [1]

ध्रुवपद के चार अंग होते थे। उदग्राह, ध्रुव, आभोग, अंतरा पं. भावभट्ट के अनुसार कुछ ध्रुवपदों के केवल दो ही अंग होते थे। इन्हीं चार भागों को आज स्थाई, अंतरा, संचारी, आभोग कहा जाने लगा है। आधुनिक काल के ध्रुवपदों में साधारण रूप से दो ही अंग देखने को मिलते हैं, स्थाई तथा अंतरा । कुछ ध्रुवपदों में चार अंग भी पाए जाते हैं। यह गायकी पुरूष प्रधान गायकी मानी जाती है। इस गायकी में स्वर, शब्द, ताल का स्वरूप शुद्ध रखा जाता है, इसका विस्तार विभिन्न प्रकार की लयकारियों द्वारा किया जाता है। ध्रुवपद गायन में सर्वप्रथम आलाप किया जाता है। प्राचीन समय में आलाप करते हुए 'ओम् नारायण अनंत हरि' या 'तू ही हरि' आदि भक्तिपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया जाता था। परन्तु विदेशी संस्कृति के प्रभाव से इनके स्थान पर नोम्-तोम् नाती, नेदा आदि शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा ।

ध्रुवपद में शब्दों की तरफ विशेष ध्यान रखा जाता है। शब्दों का उच्चारण स्पष्ट तथा शुद्ध होना ध्रुवपद की अपनी एक विशेष विशेषता है। पहले समय में ध्रुवपदों की भाषा संस्कृत हुआ करती थी परन्तु समय के प्रभाव से आज ध्रुवपद के काव्य की भाषा हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, ब्रज आदि होती है। ध्रुवपद में द्विपदी, चतुष्पदी अष्टपदी आदि गीतों का प्रयोग होता है। ध्रुवपदी गायकी में स्वर, ताल, शब्द आदि की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। स्वरों को अलंकृत करने के लिए कण, मुर्की आदि का प्रयोग नहीं किया जाता है। स्वरों का प्रयोग सीधा तथा शुद्ध रहता है। गमक आदि का प्रयोग इस शैली में भरपूर देखने को मिलता है। स्वरों का खुला प्रयोग ध्रुवपद की विशेषता है। स्वरों को दबाना वर्जित माना जाता है। इसके अतिरिक्त अकार की तानें विर्जित मानी जाती हैं पर गमक तान, बोलताल आदि लिए जाते हैं। आलाप गायन के पश्चात स्थाई, अंतरा, संचारी आभोग गाए जाते हैं। इसके साथ-साथ लयकारी का काम होता है। ध्रुवपद के गीत को विभिन्न प्रकार की लयकारियों में गाया जाता है। यह लकारियाँ सरल से लेकर अत्यंत कठिन तक होती है। अलग-अलग

1. अनिता, शर्मा / शास्त्रीय संगीत का विकास/ पृष्ठ-17-18

मात्राओं से, विभिन्न प्रकार से, सम पर आना ध्रुवपद में देखने को मिलता है। ध्रुवपद गीत विशेष रूप से तीव्रा, सूलताल, आड़ाचार ताल, रूद्रताल आदि में होते हैं।

ध्रुवपद के साथ पखावज या मृदंग की संगत की जाती है। ये तालें जिस खुले रूप से बजाई जाती हैं उसे 'थपिया बाज' कहा जाता है।

ध्रुवपद की बानियाँ- ध्रुवपद की विभिन्न शैलियों को बानियाँ कहा जाता था। यह वास्तव में घराने थे जहां ध्रुवपद का ज्ञान दिया जाता था। यही घराने बाद में ख्याल गायकी के घरानों के रूप में विकसित हुए क्योंकि इन लोगों ने ध्रुवपद को छोड़कर ख्याल गायकी को अपनाया। ध्रुवपद की चार वाणियों प्रमुख हैं- खंडार, नौहार, गोबरहार,डागुर इन बानियो का संबंध गीति से जोडा गया है जिसके पाँच प्रकार माने गए है-शुद्धा. भिन्ना, गौड़ी, बेसरा, साधारणी। इसका अर्थ यह है कि किसी बानी में लालित्य प्रधान है, तो किसी में कंपन ।

खंडार बानी- इस बानी का संबंध राजा समोखन सिंह से माना जाता है। इन्हीं समोखन सिंह को नौबद खाँ के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि तानसेन की कन्या से विवाह कर इनका नाम बदल गया था। उनके निवास स्थान खंडार के नाम पर ही इस बानी का नाम खंडार बानी पड़ा।

गोबरहार बानी- इस बानी का संबंध तानसेन से जोड़ा जाता है। यह बानी शांत तथा गंभीर मानी गई है। तानसेन गौड ब्राह्मण थे अतः उनकी वाणी का नाम गोबरहार बानी पड़ा।

डागुर बानी- इस बानी का संबंध ब्रजचंद से जोड़ा जाता है।

नौहार बानी- इस वाणी को श्रीचंद की बानी कहा जाता है।

धमार-धमार गायन शैली एक प्रमुख शास्त्रीय गायन शैली मानी जाती है। मतंग आदि विद्वानों ने इसे भिन्ना गीति के नाम से पुकारा है। यह धमार ताल में गाए जाने वाला प्रबंध (गायन शैली) है। [1]

धमार में होली के गीतों का त विशेष रूप से वर्णन मिलता है। भगवान श्री कृष्ण की रास लीला तथा ब्रज की होली के दृश्यों का वर्णन इसके काव्य का आधार है। धमार गायकी में विभिन्न प्रकार की बोल बाँटों (शब्दों अ को अलग-अलग स्वर समूहों द्वारा गाना) का प्रयोग किया जाता है। धमार विभिन्न शब्द युक्त स्वर लहरियों द्वारा गाई प जाती है। ध्रुपद गायन के समान ही सबसे पहले आलाप लिया जाता है। इसके भी दो (स्थाई. अंतरा) या चारअंग (स्थाई, अंतरा, संचारी, आभोग) भाग होते हैं। धमार गायकी में विभिन्न लयकारियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। शास्त्रीय संगीत में इसे भक्ति गायन कहा जाता है। इस गायन शैली के साथ पखावज पर संगत

---

1. परांजपे शरदचन्द्र श्रीधर /भारतीय संगीत का इतिहास , पृष्ठ-154

की जाती है। धमार गायन शैली की प्रमुख विशेषता यह है कि इसे सिर्फ धमार ताल में ही गाया जाता है अन्य किसी ताल में नहीं।

ध्रुवपद तथा धमार में अंतर यह है कि ध्रुवपद गायकी का प्रदर्शन विभिन्न प्रकार की लयकारियों जैसे आड़, बिआड़, तिगुण आदि द्वारा किया जाता है वहीं धमार में बोल-बाँट का प्रदर्शन होता है। ध्रुवपद में गीत की धुन नहीं बदलती परन्तु धमार में गीत को विभिन्न प्रकार की रागवाचक धुनों द्वारा व्यक्त किया जाता है। धमार में सिर्फ धमार ताल का ही प्रयोग होता है जबकि ध्रुवपद में अन्य तालों का प्रयोग होता है।

ठुमरी- ठुमरी के विषय में ऐसा कहा जाता है कि जो स्वरूप आधुनिक ठुमरी का है वही स्वरूप पहले 'गौड़ी' गीति का हुआ करता था। समयानुसार मुगल काल में इसे ठुमरी के नाम से जाना जाने लगा।

ठुमरी एक भाव प्रधान तथा चंचल गीत का प्रकार हैंइससे श्रृंगार रस का ही अधिकतर निष्पादन किया जाता है। ठुमरी में स्वर, ताल आदि तो प्रमुख हैं परन्तु काव्य पक्ष भी प्रबल रहता है। शब्दो की कोमलता तथा उन्हें गाने का ढंग ठुमरी की विशेषता है। शब्दों के लालित्य पूर्ण उच्चारण से ही गीत के भाव तथा रस को व्यक्त किया जाता है।

ठुमरी की काव्य रचना छोटी होती है। इसका भाव अधिकतर श्रृंगारिक रहता है। ठुमरी गायकी का विकास नृत्य के साथ ही हुआ है। इसी भाव गीत (ठुमरी) को लेकर नृत्य तथा अभिनय किया जाता था। ठुमरी के चपल तथा - चंचल होने के फलस्वरूप इसे सभी रागों में नहीं गाया जाता है। इसके लिए ठुमरी के समान ही चपल तथा चंचल रागों को लिया जाता है। जैसे खमाज, मांड, पीलू, आदि... तालों का चयन भी विशेष महत्व का है, जैसे दादरा, कहरवा आदि। ठुमरी में अधिकतर चंचल (चाचर) ताल का प्रयोग किया जाता है।[1] ठुमरी गायकी में कण, मुर्की, खटका, मींड, आदि सेअलंकृत छोटे-छोटे भावुक आलाप, तान होते हैं। अधिकतर, ठुमरी में पहले चाचर ताल का प्रयोग धीमी लय में होता है. फिर धीरे-धीरे लय बढ़ाते हैं तथा तीन ताल में गायन करते हैं। वर्तमान समय में ठुमरी की मुख्य रूप से दो शैलियाँ मानी जाती हैं-

1. पूरब अंग
2. पंजाब अंग

अंग का अर्थ घराना या विशिष्ट गायन शैली है। पंजाब शैली में काव्य (गीत) की भाषा पंजाबी या ब्रज होती है। इस शैली में ध्वनि की मधुरता, कण, मुर्की आदि का काम अधिक रहता है। छोटी-छोटी तानों का प्रयोग किया है। एक ही स्वर में विभिन्न रूपों को एक साथ गाना इस अंग की अपनी विशेषता है। पूरब अंग की ठुमरी

---

1. परांजपे शरदचन्द्र श्रीधर/ शास्त्रीय संगीत का विकास/ पृष्ठ-24 ,25

लखनऊ तथा बनारस में प्रचलित है। इस शैली में काव्य रचना श्रृंगारिक तथा छोटी रहती है। इस शैली में धीमी लय तथा शब्दालाप का प्रयोग प्रमुखता से होता है।

टप्पा- टप्पा गायन शैली के विषय में ऐसा कहा जाता है कि मियां शोरी ने बेसरा गीति के आधार पर इस शैली की रचना की। इस गायन शैली का उद्गम पंजाब के पहाड़ी क्षेत्रों में हुआ। इसका विकास अवध के दरबार में हुआ। यह शैली अत्यंत चंचल मानी जाती है। टप्पा गायकी में स्वर, शब्द, लय को कहीं भी विश्राम नहीं दिया जाता है। इस गायकी में केवल तान तथा बोलतान का ही प्रयोग होता है । तानें छोटी तथा द्रुत गति की होती है। इस गायकी के साथ टप्पा ताल बजती है। यह 16 मात्रा की ताल है। टप्पा के काव्य की भाषा पंजाबी होती है। पर अब हिन्दी आदि भाषाओं का प्रयोग भी किया जानें लगा है। यह श्रृंगार तथा करूण रस प्रधान गायकी है। इस गायकी की विशेषता यह है कि इसमें आलाप नहीं लिया जाता कण, खटका, मुर्की आदि का प्रयोग काफी होता है। इस गायकी को गाने के लिए चपल तथा तैयार कंठ की आवश्यकता होती है। टप्पा को अधिकतर पीलू, खमाज, आदि चंचल प्रकृति के रागों में गाया जाता है।[1]

ख्याल- ख्याल गायन शैली आधुनिक समय की एक लोकप्रिय गायन शैली है। ख्याल शब्द फारसी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है 'विचार' या 'कल्पना'। कुछ विद्वान ख्याल का अर्थ स्वेच्छाचार भी मानते है। अतः हम कह सकते हैं कि राग के नियमों का पालन करते हुए अपनी कल्पना या इच्छा के अनुसार, विविध प्रकार से राग के स्वरूप का वर्णन तथा विस्तार करना ही 'ख्याल' है।

यह गीत शैली कब आरम्भ हुई इसके विषय में कई मत प्राप्त होते है। एक मत के अनुसार ख्याल का आविष्कार अमीर खुसरो ने किया था। परन्तु उस समय के ग्रंथ देखने से यह पता चलता है कि उस समय कव्वाली आदि तो प्रचार में थे पर ख्याल का कहीं नाम भी नहीं मिलता है। कुछ इसे प्राचीन काल से ही मानते है। उनके अनुसार पहले रस गायन शैली का नाम कुछ और था। विद्वानों के अनुसार मध्यकाल में प्रचलित 'रूपक' नामक प्रबंध से ही ख्याल का विकास हुआ। [2]

कुछ विद्वान 'साधारणी गीति' से ही ख्याल का जन्म मानते है। इस 'साधारणी गीति' में अन्य चार गीतियों (गौड़ी, बेसरा, भिन्ना, शुद्वा) का मिश्रण था। विद्वानों का एक समूह नियामत खाँ को ख्याल का आविष्कारक मानता है। मतभेद चाहे कितने भी हो पर आधुनिक काल में यह शैली सबसे प्रमुख गायन शैली बन चुकी है। मध्य युग में ध्रुवपद गायन शैली के साथ-साथ ख्याल गायकी का प्रचार भी होने लगा था। नियामत

1. अनिता, शर्मा / शास्त्रीय संगीत का विकास/ पृष्ठ-17-18
2. परांजपे शरदचन्द्र श्रीधर/ शास्त्रीय संगीत का विकास/ पृष्ठ-24-26

खाँ ने इस गायन शैली को आगे बढाया। धीरे-धीरे ध्रुवपद का प्रचार-प्रसार कम होने लगा तथा ख्याल गायन की लोकप्रियता बढने लगी।

ख्याल गायन शैली की काव्य की भाषा हिन्दी, ऊर्दू या अन्य भाषा होती है। ख्याल गायकी में पहले थोड़ा सा राग वाचक आलाप किया जाता है। आलाप के बाद 'बड़ा ख्याल' गाया जाता है। यह विलम्बित लय में होता है तथा इसे अधिकतर तीनताल, एक ताल आदि में गाया जाता है।

इसके बाद छोटा ख्याल गाया जाता है। इसकी लय द्रुत होती है । ख्याल गायकी में राग के लक्षणों के अतिरिक्त कण, मींड़, गमक आदि का प्रयोग होता है। बीच-बीच में आलाप के छोटे टुकडे, तानें, बोलतान आदि का प्रयोग गायक अपनी इच्छा के अनुसार करता है। काव्य, लय, स्वर आदि के संयोग से ख्याल गायकी आधुनिक काल की प्रसिद्ध शैली है। ख्याल गायन की संगत तबले पर की जाती है।

तराना- यह भी गायकी का एक प्रकार है। इस शैली में गीत के ऐसे शब्द होते हैं जिनका कोई अर्थ नहीं होते है। जैसे, ना, ते, दा, देन, आदि। इसके दो भाग होते हैं स्थाई तथा अंतरा, तराने में तानों का प्रयोग किया जाता है तथा इसे केवल द्रुत लय में ही गाया जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि ये बिना अर्थ वाले अक्षर अरबी भाषा के बीज मंत्र है जिनका प्रयोग भगवान की उपासना के लिए किया जाता है। तराना गीतों को तीन ताल में अधिकतर गाया जाता है। इसमें लय बढती जाती है, इसे अधिकतर छोटे ख्याल के बाद गाया जाता है।

त्रिवट- त्रिवट की रचना पखावज का मृदंग के बोलों को स्वर ताल में निबद्ध होने पर होती है। किसी तराने में । जब मृदंग के बोलों का प्रयोग किया जाता है तो उसे त्रिवट कहते हैं। इसमें पखावज या मृदंग के बोलों पर राग के गमक आदि अलंकारों की रचना गाई जाती है। गायन मृदंग के बोलों को विभिन्न लयों में गाता है। यही बोल मृदंग पर उसी लय में बजाए जाते हैं। यह शैली स्वर प्रधान तथा लय प्रधान कही जाती है। त्रिवट अधिकतर तीनताल, कहरवा आदि तालों में होते हैं। [1]

चतुरंग- चतुरंग शस्त्रीय संगीत का एक विशिष्ट गायन प्रकार है। इसके चार भाग होते हैं.(कविता) (तराना, निवट) (सरगम) जब तराना बोलों में पखावज के बोलों के साथ-साथ साहित्य तथा सरगम का प्रयोग किया जाता है तो उसे चतुरंग कहा जाता है। कविता में गीत के शब्दों को ख्याल अंग से गाकर राग की विशेषताएं

1. चौबे, सुशील कुमार/हमारा आधुनिक संगीत/पृष्ठ-183-184

बताई जाती हैं। तराने में तराने के शब्दों का प्रयोग होता है। त्रिवटमें मृदंग के बोलों को गाया जाता है तथा सरगम में स्वरों को लय में गाते हैं। इसमें तानों का प्रयोग भी किया जाता है।

सरगम- राग बद्ध तथा ताल बद्ध विशेष स्वर रचना को सरगम कहा जाता है। इसमें शब्द नहीं होते परन्तु सा रे ग म प आदि स्वरों को ही अलग-अलग ढंग से राग तथा ताल के अनुसार गाते हैं। रागों के स्वरों का अभ्यास करवाने के लिए इसी की शिक्षा दी जाती है। ठुमरी आदि में सरगम गाई जाती है।

लक्षण गीत- जब किसी गीत के शब्दों में राग के लक्षणों जैसे, वादी संवादी आदि स्वरों का वर्णन मिले तो ऐसे गीत को 'लक्षण गीत' कहते हैं। लक्षण गीत को उसी राग में निबद्ध कर गाते हैं। इस गीत प्रकार को ख्याल आदि के समान महत्व नहीं दिया जाता हैं ये केवल राग के विशेष लक्षणों को समझाने हेतु बनाए गए हैं।

दादरा- दादरा गीत प्रकार सुगम संगीत के अंतर्गत आता है। यह गीत प्रकार पूर्ण रूप से शब्द प्रधान है । इसके गीत में तीन में से चार तक अंतरे होते हैं। दादरा के गीत का काव्य मौसम से संबंधित रहता है अर्थात इसमें बसंत, सावन आदि का वर्णन श्रृंगारात्मक रूप से किया जाता है। दादरा गीत 'दादरा' ताल के अतिरिक्त अन्य तालों में भी गाए जाते हैं। इस शैली के लिए पीलू, झिंझोटी, देस आदि राग उपयुक्त माने जाते हैं, इसमें आलाप, तान आदि का प्रयोग नहीं किया जाता है। शब्दों को राग तथा ताल में बांधकर प्रस्तुत करते हैं।

गज़ल- गज़ल की अत्पति यवन संस्कृति के भारत आगमन पर हुई। भारत में गज़ल को प्रसारित करने का श्रेय प्रसिद्ध सूफी संत ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती को जाताके है। गज़ल को प्रतिष्ठा दिलवाने में खिलजी साम्राजय के दंग राजकवि अमीर खुसरो ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। पर गजल गायकी सुगम संगीत के अंतर्गत मानी गई है। गज़ल य में शायरी तथा गायकी का अपना एक अलग अंदाज है। वा गज़ल की रचना विविधा छंदों में होती है जिनको 'बहर' कहा जाता है। गज़ल के दो भाग होते हैं, स्थाई तथा अंतरा । अंतरे दो, तीन, चार या अधिक भी होते हैं।

गज़ल गायकी की विशेषता एक यह भी है कि इसमें के राग की शुद्धता पर ध्यान नहीं दिया जाता पर भाव पक्ष पर है अधिक ध्यान दिया जाता है। गज़ल का काव्य उर्दू, पंजाबी, हिन्दी आदि में होती है। गज़ल को अधिकार, कहरवा, दादरा, रूपक आदि तालों में गाया जाता है। इसमें शब्दों का शुद्ध उच्चारण करना विशेष है। गज़ल में जहाँ एक तरफ श्रृंगारिकता प्रधान है वहीं गंभीरता, करूणा आदि भाव भी दिखाई देता है ।

भजन- यह एक प्राचीन शैली है। भजन शैली प्रयोग केवल ईश्वर की आराधना के लिए किया जाता हैं। भक्ति के लिए जो गीत गाए जाते है उन्हें ही भजन कहा जाता है।

यह एक शब्द प्रधान गायकी है। इसमें शब्दों का प्रयोग ही महत्वपूर्ण है। भजन में राग की शुद्धता की अपेक्षा शब्दों के चयन को विशेष महत्व दिया जाता है। भजन अधिकतर रूपक, कहरवा, दादरा, तीनताल आदि में होते हैं। भजन के साथ कई वाद्यों का प्रयोग किया जाता है।

2:1:2 गायन के घराने- संगीत में घराने का बड़ा महत्व माना गया है। घराने से मतलब किसी विशिष्ट गुरु-परम्परा से होता है। घराने की प्रथा संगीत के सभी प्रकारों में पाई जाती है। जिस प्रकार गायन में घराने होते हैं, वैसे ही वाद्य तथा नृत्य के भी घराने देखे जाते हैं। गायन के अन्तर्गत भी धुपद, ख्याल तथा ठुमरी जैसी शैलियों में भी गायकों के विभिन्न घराने देखे जा सकते हैं घरानों का प्रचलन उत्तर तथा दक्षिण दोनों में बराबर पाया जाता है। उत्तर में जिसे घराना कहते हैं, दक्षिण में वही 'संप्रदाय' कहलाता है।

संप्रदाय शब्द हमारी संस्कृति के लिए नया नहीं है। कला तथा साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न संप्रदाय पाये जाते हैं। इन्हें पाश्चात्य देश में 'स्कूल्स्' कहा जाता है। हमारे यहाँ यही 'मत' या 'वाद' के नाम से जाने जाते हैं। प्राचीन काल में संगीत में शिवमत, ब्रह्ममत तथा भरतमत जैसे विभिन्न संप्रदाय थे। ये वे घराने थे जिनकी संगीत तथा नाट्य के सम्बन्ध में विशिष्ट एवं स्वतंत्र मान्यताएँ थीं। दत्तिल, कोहल, मतंग तथा अभिनवगुप्त भरत संप्रदाय के अनुयायी थे। [1]

"The word Gharana is derived from Ghar [House from the Sanskrit noun Girah] .In Hindi and Urdu]Gharana is a therefore noun denoting those who live under the same roof. Therefore, a family, lineage, aclean. The first significance of the term is this derived form heredity or ties of kinship."

घराना या संप्रदाय गुरू तथा शिष्य के संयोग से बनता है। यह गुरू-शिष्य परम्परा शास्त्र तथा कला दोनों के लिए आवश्यक मानी गई है। शास्त्र अथवा कला के सूक्ष्म अंगों का ग्रहण तब तक संभव नहीं जब तक योग्य आचार्य से शिक्षा न ली जाए। विधा वही सफल होती है जो सही रूप से सीखी जाती है। विद्या या कला की सफलता में जितना योगदान योग्य शिष्य का है, उतना ही योग्य आचार्य का भी। भरताचार्य ने आचार्य के अनेक गुणों में एक गुण 'शिष्यनिष्पादन' बताया है। अच्छे शिष्य ही गुरु-परंपरा को वास्तविक रूप से सुरक्षित

1. कुमार, चौबे सुशील/ संगीत मे घरानों की चर्चा/ पृष्ठ-56

रखने में समर्थ होते हैं और ऐसे शिष्य को तैयार करने की क्षमता अच्छे आचार्य की अपेक्षा रहती है विद्यादान करने वाले गुरु और प्रतिभा शाली गुरु शिष्य के होने पर ही 'संप्रदाय' या 'घराने' का जन्म होता है। [1]

घराना रीति या शैली का ही दूसरा नाम है। किसी अधिकारी गुरू में कला-प्रदर्शन के अन्तर्गत कोई विशिष्ट गुण हुआ करते हैं। कला अनंत और अपार है। सौंदर्य इसकी आत्मा है। इस सौन्दर्य के अनेक पहलू होते हैं इनमें से किसी एक पहलू पर किसी घराने का अधिकार हो जाता है। कोई बड़ा कलाकार इसी अंग को ऐसे अधिकार में कर लेता है कि अन्य अंगों की अपेक्षा वही उसकी कला में चमकता रहता है। वही गुण वह अपने शिष्यों को सिखाता है। शिष्य अपने गुरू की परंपरा को आगे बढ़ाता है तथा शाखा प्रशाखाओं में उस विद्या का विस्तार करता है। घराना एक विशिष्ट गायन-शैली, वादन-शैली या नृत्य-शैली का सूचक होता है। यह शैली या 'रीति' जिस कलाकार के द्वारा प्रवर्तित होता है, वे ही उसके संस्थापक माने जाते हैं और उन्हीं के नाम से अथवा निवास-स्थान से घराने का नामकरण होता है। घराने का सूत्रपात तब होता है जब घराने की शैली में कोई विलक्षणता हो या कोई अनोखा तत्व हो। शैली का अनोखापन घराने का विशिष्ट लक्षण होता है। यह घराना स्थिर तब होता है जब इस शैली का अनुसरण करने वाला शिष्यसमुदाय हो । घराना तब तक सुरक्षित रहता है जब तक घराने की रीति-नीति के साथ ईमानदारी की भावना शिष्य के मन में रहती है। यदि किसी प्रतिभाशाली कलाकार की शैली अभूतपूर्व हो परंतु वह उसी तक सीमित हो, तो उसे किसी घराने का प्रवर्तक नहीं माना जाता। घराने के सुरक्षित चलते रहने में अनुकरण की प्रवृत्ति बड़े महत्व की होती है। जहाँ अनुकरण के स्थान पर स्वतंत्र प्रतिभा या कल्पना का उपयोग किया जाता है, वहीं घराने का अंत हो जाता है। घराना और वैयक्तिकता दो परस्पर विरोधी कल्पनाएँ हैं। घरानों में वैयक्तिकता केवल मूल संस्थापक में ही हो सकती है, शागिदों में नहीं। घराना शुरू होने के लिए कलाकार की कला में वैयक्तिकता या निजीपन होना जरूरी है परन्तु घराना सुरक्षित रूप से चलने के लिए शिष्यों की वैयक्तिकता बाधक हो सकती है। आज संगीत का जो सामूहिक तथा बड़े पैमाने पर अध्यापन किया जाता है, वह 20 वीं शताब्दी की देन है। इसके पहले यह प्रणाली नहीं थी। [2]

गुरू शिष्य को सीना-ब-सीना तालीम देता था और शिष्य भी बड़ी श्रद्धा से कला की खूबियों को बटोरता रहता था। उस्ताद की सारी विशेषताएँ शागिर्द के कंठ अथवा हाथ में आ जाती थीं और यह आना जरूरी भी माना जाता था। प्रयत्न होता था कि शागिर्द उसकी हूबहू तस्वीर बने। इसी लिहाज से तालीम पूरी होने तक शागिर्द

1. कुमार, चौबे सुशील/ संगीत मे घरानों की चर्चा/ पृष्ठ-55
2. कुमार, चौबे सुशील/ संगीत मे घरानों की चर्चा/ पृष्ठ-653

को किसी दूसरे घराने का संगीत सुनने की इजाजत नहीं मिलती थी। उस्ताद कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता था कि उसका पुत्र, जाती है। वंशज या शागिर्द किसी दूसरे की गायकी गाये।

कलाओं में जब परिपक्वता आती है, तब वह परिपक्वता विशिष्ट शैलियो को जन्म देती है। भारतीय संगीत में ऐसी गायन शैलियों ने घराना या परंपरा का रूप प्राप्त किया है। हिन्दुस्तानी संगीत जगत में घरानों की परंपरा और विशेषताये एक बड़ा ही आकर्षण का विषय रहीं हैं। स्वर-लय के सूक्ष्म संयोजन के विषय में हर घराने की अपनी निजी रस-दृष्टि रही है, और उन्होंने अपनी कला की अभिव्यक्ति में अनोखापन का सृजन किया है। उन मुख्य घरानों का विस्तार में परिचय इस प्रकार है।

ख्याल गायकी के घराने- वर्तमान संगीत ने ख्याल गायकी का प्रचार है। आज 'रागदारी' संगीत का अर्थ भी ख्याल गायन से ही लिया जाता है। आज ख्याल गायकी के कई घराने भारत में प्रचलित है, जैसे-

- रामपुर घराना
- दिल्ली घराना
- लखनऊ घराना
- ग्वालियर घराना
- पटियाला घराना
- जयपुर घराना
- मेवाती घराना
- भिंडी बाजार घराना
- मनरंग, गोखले घराना

ये सभी ख्याल गायकी की विभिन्न प्रणालियाँ हैं।

दिल्ली घराना-यह घराना ख्याल गायकी का प्राचीन घराना रहा है, इस घराने का जन्म तथा विकास मुगल दरबार में हुआ। बहादुर शाह जफर के गुरू गुलाम हुसैन (मियाँ अचपल) इस घराने के संस्थापक माने जाते हैं। दिल्ली घराने का संबंध मुख्य रूप से सारंगियों से होने के कारण इसमें सूत, मौड़, गमक, लहक आदि का काम विशेष रूप से विलंबित लय में होता है। स्वरों का आपसी गुथांव तथा जोड़-तोड़ का काम मध्य लय में अधिक किया जाता है। दिल्ली घराने की मुख्यता जटिल तानें है। तानों के विचित्र नाम इसी घराने में देखने को मिलते हैं। जैसे फंदे की तान, उड़न की तान, खेंच तान, झूले की तान आदि ।[1]

1. कुमार, चौबे सुशील/ संगीत मे घरानों की चर्चा/ पृष्ठ-653-654

तानों की जटिलता तथा विविधता इसे अन्य घरानों से अलग कर देती है। दिल्ली घराने में विलंबित लय के साथ तिलवाड़ा, झूमरा, सवारी ताल का अधिक प्रयोग होता है। मध्य लय की चीजों के साथ आड़ाचार ताल, फरदोस्त ताल आदि उपयुक्त मानी जाती हैं। द्रुत लय में तीनताल, एक ताल, रूपक आदि तालें प्रयुक्त की जाती है। दिल्ली घराने के कलाकारों में उ० चाँद खाँ, उ० उस्मान खाँ, नन्ने खाँ, संगीत खाँ, सम्मन खाँ, उ०, मम्मन खाँ, उ० बुंदु खाँ, नसीर अहमद, जहूर अहमद आदि हैं। दिल्ली घराने से ही कई घरानों का जन्म हुआ। जैसे बरेली, आगरा, पटियाला, उज्जैन, आदि।[1]

ग्वालियर घराना- इसका आरम्भ नत्थन पीरबख्श से माना जाता है। यह घराना लखनऊ घराने से ही निकला है। लखनऊ घराने के गुलाम रसूल इस परम्परा के मूल पुरूष हैं। ग्वालियर घराने की गायकी में आरम्भिक स्वर खुला तथा जोरदार लगाया जाता है। आवाज को छुपाया या दबाया नहीं जाता है। इस घराने में आवाज को तीनों सप्तकों के लायक बनाने के लिए विशेष स्वर साधना कराई जाती है। इस घराने में स्थाई गाने से पूर्व कुछ राग-दर्शक आलाप किए जाते हैं। इसके बाद विलंबित लय में स्थायी का आरम्भ होता है ।[2] स्थाई तथा अंतरा एक बार गाने के बाद आलाप लिए जाते हैं। स्वरों के धीरे-धीरे बढ़त की न जाती है तथा तार सप्तक तक पहुँचा जाता है। इसके बाद अंतरा लेकर तार सप्तक में आलाप करते हैं। आलाप के पश्चात् तानों का सिलसिला आरम्भ होता हैं इस घराने में- पल्लेदार तथा दानेदार तानें प्रसिद्ध है। ग्वालियर घराने की गायकी गंभीर, तथा भव्य होती है।

ग्वालियर घराने का प्रचार आज सर्वाधिक पाया जाता है। हद्दू खाँ तथा हस्सू खाँ की शिष्य परम्परा के माध्यम से इस घराने का प्रचार देश के विभिन्न भागों में हुआ है। इस घराने के प्रमुख कलाकारों में निसार हुसैन, मेंहदी खाँ, नजीर खाँ, रामकृष्ण, बुवा वझे, शंकर राव पंडित, राजा भैया पूंछ वाले, बाबा दीक्षित, वासुदेव राव जोशी, बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर, विष्णु दिगम्बर पलुस्कर आदि है।[3]

पटियाला घराना-पटियाला घराना वास्तव में दिल्ली घराना ही रहा परन्तु पंजाब की स्थानीय शैलियों से प्रभावित होने के ने कारण इसे 'पंजाब का घराना' कहने लगे। यह पटियाला न नामक रियासत में उन्नत हो रहा था अतः इसे 'पटियाला' घराना कहा जाने लगा ।

इस घराने में दिल्ली, ग्वालियर, जयपुर घरानों की विशेषताएं एक साथ देखी जा सकती है। इस घराने में न तैयारी तथा कोमलता दोनों ही पाई जाती है। अति द्रुत लय में सपाट तानें प्रमुख है। गमक अंग तथा तरानों

---

1. संगीत-घराना अंक पृष्ठ-28
2. मिश्र शंभूनाथ / हिंदुस्तानी भारतीय संगीत की घराना परम्परा/ पृष्ठ-126
3. कुमार, चौबे सुशील/ संगीत मे घरानों की चर्चा/ पृष्ठ-651

की गायकी प्रमुख है। पटियाला घराने की गायकी में लय के अनुसार तोड़े, तानें अलग-अलग ढंग की होती है। इसकी गायकी न पर सूफी बानी, टप्पा, कव्वाली आदि का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। यह घराना तानरस खां से उत्पन्न माना गया है। 1857 के पश्चात् भारत में क्रांति की लहर तेज हो गई थी। राजधानी दिल्ली में मुख्य रूप से इसका प्रभाव पड़ा। अतः दिल्ली से अधिकतर कलाकार पंजाब की तरफ चले गए। के पटियाला के राजा नरेन्द्र सिंह ने इन कलाकरों को शरण दी। इनमें तानरस खाँ भी थे। इन्हीं की शिष्य परम्परा से पटियाला घराना उत्पन्न हुआ। इस घराने के कलाकारों में अलीवख्श, नबी बख्श, फतेअली आदि है। अली बख्श तथा फतेअली की जोड़ी को अलियाफतू के नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त, उ० बड़े गुलाम अली खाँ, अमानत अली, नजाकत अली, मुन्नवर अली, गुलाम अली आदि इसी घराने के गायक रहे है।

किराना घराना- इस घराने का संबंध प्रसिद्ध बीनकार बंदे अली खाँ से जोड़ा गया है। इस घराने का नाम उ० अब्दुल करीम खाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अन्य कलाकारों में सवाई गंधर्व, सुरेश बाबु, गंगूबाई हंगल, उ० रजब अली, उ० अमीर खाँ, रोशन आरा बेगम, हीराबाई बड़ोदकर, पं. भीमसेन जोशी आदि प्रमुख हैं। इस घराने में चैनदारी प्रमुख है। बीनकारों का घराना होना के कारण गायकी में लगाव, लोच, मींड़ आदि का काम प्रमुख रहता है।

किराना घराने में तोड़ी, पूरिया, दरबारी, मालकौंस आदि राग विशेष है। स्वरों का प्रयोग कोमलता तथा गंभीरता से किया जाता है। इस में आलाप को विशेष महत्व दिया जाता है।

जयपुर घराना-इस घराने का आरम्भ जयपुर के करामत अली तथा मुबारक अली 'लखनऊ वाले' से माना जाता है। जयपुर घराने के कलाकारों में भूर्जी खाँ, केसरबाई केरकर, मल्लिकार्जुन मंसूर, निवृतिबुवा सरनाइक, मोघुवाई कुर्डीकर, किशोरी अमोणकर, आदि प्रमुख है।

इस घराने में विलंवित, गमक युक्त आलाप, एक ही सांस में एक से अधिक आवर्तनों तक आलाप लेना प्रमुख हैं। इस घराने में विलंबित तीन ताल अधिक प्रयोग में लाई जाती है। छोटी-छोटी ताने ली जाती है। अप्रचलित रागों का गायन प्रमुख रूप से देखा जा सकता है। गीत की बंदिश प्रायः छोटी रहती है।[1]

आगरा घराना- इस घराने के कलाकार अपने घराने का मूल पुरूष सुजान खाँ को मानते है जो तानसेन के समकालीन थे। इस घराने का प्रचार बाद में सुदाबख्श 'घग्गे' द्वारा हुआ। इन्होंने ही इस घराने की नींव डाली। आगरा घराना मुख्य रूप से ध्रुपद तथा धमार गायकों द्वारा का रहा है। इसलिए ख्याल गायन पर इनका प्रभाव

1. संगीत-घराना अंक पृष्ठ-28

स्पष्ट में रूप से देखने को मिलता है। लयकारी के साथ बोल अंग का विस्तार करना इस घराने की अपनी विशेषता है। चीज के बोलों के साथ पल्टों की बढ़त करना तथा ताल के विभिन्न भागों से तान की उपज शुरू करना विशेष है आगरा घराने के गायकों का स्वरों का लगाव गहरा तथा बुलंद होता है। धुपद की नोमतोम तथा लयकारी इस घराने में ख्याल के साथ दिखती है।[1]

2:2 दक्षिण भारतीय शास्त्रीय संगीत

भारत में प्राचीनकाल से प्रचलित संगीत शास्त्र का इतिहास वेदों की ओर जाता है। भारतीय संगीत शास्त्र से संगीत अभिव्यक्ति की नई शैलियों की खोज से पता चलता है कि मनुष्य की प्रतिभा कितनी ऊँचाई तक पँहुच सकती है। मनोरंजन के अलावा संगीत का प्रयोग मानव के व्यक्तित्व के विकास हेतु किया जाता था ताकि आन्तरिक सुख प्राप्त कर सके। इसकी एक दम सही ध्वनि प्रणाली और विस्तृत राग व भारतीय संगीत की तबला पद्धतियां इसे विश्व की अन्य आधुनिकतम संगीत पद्धति के बराबर का स्थान दिलाती हैं।

संगीत के संबंध में हमारे पास जो प्राचीनतम शोध-प्रबन्ध है वह भारत का नाट्य शास्त्र है । भारत के बाद संगीत के संबंध में अन्य शोध-प्रबन्ध, जैसे कि मतंग का बृहद्देसी, सारंगदेव का संगीत रत्नाकर, हरिपाल का संगीत सुधाकर, रम्ममत्या का स्वरमेलकलानिधि आदि से हमें संगीत के विभिन्न पहलुओं के बारे में और भिन्न-भिन्न कालों के दौरान इसके विकास के बारे में सूचना का एक स्रोत प्राप्त होता है।[2]

दक्षिण भारत के प्राचीन तमिलों ने भारत की अत्यंत विकसित प्रणाली उसकी सोल्फा पद्धतियों, सुसंगत और विसंगत लेखों, सोपानों और विधियों के साथ विकसित की थी। संगीत और नृत्य के साथ अनेक वाद्य यंत्रों का भी प्रयोग किया जाता था । सिलप्पदिकरम' नामक द्वितीय शताब्दी ई.प. के तमिल शास्त्रों में उस अवधि के संगीत का एक सामान्य उल्लेख किया गया है।

सातवीं और आठवीं शताब्दी ई.पू. के शैव और वैष्णव सन्तों का योगदान और तोलकाप्पियम कोल्लादम भी संगीत इतिहास का अध्ययन करने के लिए स्रोत सामग्री उपलब्ध कराते हैं । भारतीय संगीत के विकास के दौरान हिन्दुस्तानी और कर्नाटक संगीत के रूप में दो उप भिन्न-भिन्न शैलियां विकसित हुई जिसका उल्लेख 14 वीं शताब्दी ई.प. में पाल शासन काल के दौरान संगीतकारों द्वारा लिखित 'संगीत सुधाकर' में पहली बार कर्नाटक और हिन्दुस्तानी शब्दों के रूप में किया गया है। हिन्दुस्तानी और कर्नाटक की दो भिन्न-भिन्न प्रणालियां, मुस्लिमों के आगमन के बाद प्रचलन में आई, विशेष रूप से दिल्ली के मुग़ल शासकों

---

1. कुमार, चौबे सुशील/ संगीत मे घरानों की चर्चा/ पृष्ठ-650
2. दुबे, डॉ. एच. एन./दक्षिण भारत का बृहत् इतिहास/ पृष्ठ-25-26

के शासन के दौरान संगीत की दोनों ही पद्धतियाँ एक समान मूल स्रोत से फली फूलीं। हालांकि भारत के उत्तरी भाग के भारतीय संगीत में फारसी और अरबी संगीतकारों के संगीत की कुछ विशेषताओं को शामिल किया गया है जिसने दिल्ली के मुगल शासकों के न्यायालयों को सुशोधित किया और दक्षिण के संगीत का विकास उसके अपने मूल स्रोत के अनुसार जारी रहा । तथापि उत्तर और दक्षिण की दोनों पद्धतियों के मूलभूत पहलू वैसे ही रहे ।

कहा जाता है कि दक्षिण भारतीय संगीत, जैसा कि वह आज जाना जाता है, मध्यकाल में यादवों की राजधानी देवगिरि में फला-फूला और मुसलमानों द्वारा आक्रमण और नगर की लूटपाट के बाद नगर का सम्पूर्ण सांस्कृतिक जीवन विजयनगर के कृष्णादेव राय के शासन के अधीन विजयनगर के कर्नाटक साम्राज्य में संरक्षण प्राप्त हुआ। उसके बाद, दक्षिण भारत का संगीत कर्नाटक संगीत के नाम से जाना जाने लगा। वर्ष 1484 में पुरन्दरदास के आगमन से कर्नाटक संगीत के विकास में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना घटी। उन्होंने कला में पूर्ण व्यवस्था और शुद्धीकरण के जरिए यह कार्य किया । यह स्थिति आज तक वैसी ही बनी हुई है। उन्हें 'कर्नाटक संगीत का पितामह कहा जाना ठीक ही है। वह न केवल एक रचनाकार थे बल्कि सर्वोच्च कोटि के लक्षणकार भी थे। दक्षिण भारतीय संगीत, जैसा कि वह अब है, भावी पीढी के लिए उनका यह एक विशुद्ध उपहार है। उन्होंने संगीत शिक्षा के लिए बुनियादी पैमाने के रूप में मलावागोवला पैमाना लागू किया । उन्होंने संगीत सीखने वालों के लिए पाठों की एक श्रृंखला के एक भाग के रूप में श्रेणीबद्ध अभ्यास भी तैयार किया। संगीत शिक्षण में यह पद्धति आज भी विद्यमान है।

पूरंदरदास द्वारा रचित स्वरावालिस, जनता वारिसस, सुलदी सप्त ताल, अलंकार और गीतम कला में निपुणता के लिए आधार बनाते हैं । संरचनात्मक शैलियों में अनेक लक्ष्य गीतम और लक्षणा गीतम, ताना वर्नम, तिल्लाना, सुलादी, उगभोग, वृत्त नम और कीर्तन उन्हीं की देन है। उनके कीर्तनों को दसरा पद अथवा देवर्नम के रूप में जाना जाता है।

सत्रहवीं शताब्दी मे, कर्नाटक मे 72 मेलकर्ता की एक महत्वपूर्ण योजना शुरू हुई जिसे वेंकटमखी द्वारा लागू किया गया और अपनी कृति 'चतुर्दंडी प्रकाशिका' में वर्ष 1620 ई० पू० शामिल किया । मेलकर्ता योजना अत्यंत विस्तृत और रीतिबद्ध सूत्र है जिसका देश के विभिन्न भागो में प्राचीन और आधुनिक संगीत प्रणालियों में प्रयोग किया जाता है । इस योजना से राग की रचना के नए मार्ग खुल गए, जैसे कि त्यागराज ने उसका अनुसरण करते हुए बहुत से सुन्दर रागों का आविष्कार किया ।

अम्यास संगीत के क्षेत्र में दक्षिण भारत में बुद्धिमान और विविध रचनाकारों की परम्परा कायम थी जिन्होंने हजारों रचनाओं के साथ कला को समृद्ध किया। पुरंदरदास, तल्लापाकम अन्नामाचार्य नारायण तीर्थ, भद्राचलम रामदास और क्षेत्रंजा ने रचनाओं की सम्पदाओं में योगदान किया ।

सन् 1750 से 1850 ई.प. के बीच तिरूवरूर में संगीत की त्रिमूर्ति त्यागराज, मुत्तुस्वामी दीक्षितार और श्यामा शास्त्री के जन्म के फलस्वरूप कर्नाटक संगीत में गतिशील विकास का युग प्रारम्भ हुआ । त्रिमूर्ति न केवल, अपने समकालीन थे बल्कि पश्चिमी संगीत के महान् रचनाकारों के भी समकालिक थे, जैसे कि बीथोवन मोजार्ट, वागनेर और हाइडेन आदि । यह पूरे विश्व में संगीत का 'स्वर्ण युग' था। इस अवधि के दौरान कर्नाटक संगीत कलात्मक उत्कृष्टता के अपने शिखर पर पहुँच गया था । त्रिमूर्ति काल के बाद अनेक रचनाकारों ने कर्नाटक संगीत के ध्वज को ऊँचा उठाए रखा। वीणा कुप्पाय्यर, पतनम् सुब्रमण्यम अय्यर, रामानद श्रीनिवास अयंगर मैसूर सदाशिव राव, मैसूर वासुदेवधर तथा पपनासाम सिवन जैसे कुछेक नाम हैं जिनका यहां उल्लेख किया जा सकता है।

सुब्बारामा दिक्षितार द्वारा सन् 1904 में लिखित 'संगीत सम्प्रदाय प्रदर्शनी, पिछली शताब्दियों के संगीत, संगीतकारों और रचयिताओं के संबंध में सूचना के लिए प्राधिकृत ग्रन्थ हैं । दक्षिण के बहुत से संगीतकार और रचयिता हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के भी मर्मज्ञ और जानकार थे और जहां कहीं आवश्यकता होती, उन्होंने अपनी रचनाओं के लिए हिन्दुस्तानी रागों को अपनाया । यमन कल्याण, हमीर कल्याण, मालकौंस, वृन्दावनी सारंग, जयजयवन्ती आदि रागों को त्रिमूर्ति संगीत में अपनाया। राग काफी, कनादा, खमाज, पराज, पूर्वी, भैरव आदि में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में शैलियां अपने प्रतिरूपों से बिल्कुल मिलती जुलती हैं।

निबद्ध और अनिबद्ध संगीत से संबंधित अनेक संगीत शैलियां हैं, उदाहरणार्थ कल्पिता संगीत और मनोधर्म संगीत अथवा संशोधित संगीत । इन सभी शैलियों को सामान्यतः भिन्न-भिन्न शीर्षों के अन्तर्गत श्रेणीकृत किया गया है, जैसे कि शुद्ध संगीत, कला संगीत आदि । इन शीर्षों के अन्तर्गत अनेक शैलियों की अपनी-अपनी विशिष्ट विशेषताएं है। प्राचीन संगीत शैली, जैसे कि प्रबंध आदि, धीरे-धीरे भिन्न-भिन्न आधुनिक संगीत शैलियों तक पहुंची। हालांकि आधुनिक शैलियों में प्राचीन प्रबंधों के मूल तत्त्व अब भी विद्यमान हैं। इन प्राचीन प्रबंधों का प्रभाव देखने को मिलता है । बुनियादी तत्व अब भी आधुनिक शैली में विद्यमान है। निम्नलिखित संगीत शैलियां अध्ययन के लिए रुचिकर हैं । [1]

1. दुबे, डॉ. एच. एन./दक्षिण भारत का बृहत् इतिहास/ पृष्ठ-25-26

गीतम- गीतम सरलतम शैली की रचना है । संगीत के नौसिखियों को सिखाया जाने वाला गीतम रचना में बहुत ही सरल हैं, जिसमें संगीत का सहज और मोहक प्रवाह है। संगीत का यह स्वरूप उस राग का एक सरल मोहक विस्तार है जिसमें इसकी रचना की जाती है। इसकी गति एक समान होती है। इसमें कोई खण्ड नहीं होता जो गीत के एक भाग को दूसरे से अलग करे । इसे शुरू से लेकर अन्त तक बिना दोहराए गाया जाता है। संगीत में कोई जटिल भिन्नताएं नहीं हैं। संगीत का विषय सामान्यतः भक्तिपूर्ण होता है यद्यपि कुछेक गीतों में संगीत महानुभावों और आचार्यों का गुणगान किया जाता है। गीतम की एक उल्लेखनीय विशेषता गीतालंकारों की विद्यमानता है जैसे कि ईया, एईयम, वा ईया आदि जिन्हें मात्रिका पद कहा जाता है, जो सम गान में आने वाले ऐसे ही अक्षरों के संकेतक हैं। गीतों की रचना संस्कृत, कन्नड़ और भन्दिरा भाषा में की गई है। गणेश, महेश्वर और विष्णु की प्रशंसा में पुंरदरदास के प्रारम्भिक गीतों को संगीत के छात्रों को पढ़ाये जाने वाले गीतों के सबसे पहले सैट में सामूहिक रूप से पिल्लारी गीत के नाम से पुकारा गया। ऊपर वर्णित गीतों की शैली से भिन्न, लक्ष्य गीत अथवा सामान्य गीतों के रूप में ज्ञात, जैसा कि इसके नाम से ही पता चलता है, राग के लक्षणों का वर्णन किया गया है, जिसमें उनकी रचना की जाती है। पैडाला गुरुमूर्ति शास्त्री, पुरंदरदास के बाद गीतों के एक महान रचनाकार थे । वेंकटामखी ने भी बहुत से लक्षण गीतों की रचना की है।

सुलादी- संगीत प्रणाली और व्यवस्था में गीतम की तरह ही सुलादी का स्तर गीतम से उच्च स्तर का होता है। सुलादी एक तालमलिका है, खण्ड भिन्न-भिन्न तालों में होते हैं। साहित्य अक्षर, गीतों की तुलना में कम होते हैं तथा स्वर विस्तारों का समूह होता है । विषय भक्ति होता है । सुलादी की रचना भिन्न-भिन्न गीतों में की जाती हैं, जैसे विलंबित, मध्य और द्रुत । पुंरदरदास ने बहुत सी सुलादियों की रचना की है ।

स्वराजति- इसे गीतम में पाठ्यक्रम के बाद सीखा जाता है। गीतों से अधिक जटिल, स्वराजति, वर्णमों के अध्ययन के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। इसके अन्तर्गत तीन खण्ड सम्मिलित है जिन्हें पल्लवी अनुपल्लवी और चरनम कहा जाता है । विषय भक्ति, साहस अथवा प्रेम से संबंधित होता है । इसकी उत्पत्ति जाति से ताल, सोल्फा अक्षरों, जैसे कि तका तारी किता नाका तातिन गिना ताम) एक नृत्य के रूप में हुई। किन्तु बाद में, श्याम शास्त्री ने, जो एक संगीत त्रिमूर्ति थे बगैर स्वराजाति के इसकी रचना की, जो बहुत ही सुन्दर हैं, तथा अपने संगीत मूल्य के लिए उल्लेखनीय है ।

जतिस्वरम- संगीत प्रणाली में स्वराजाति के समान ही जतिस्वरम का कोई साहित्य या शब्दावली नहीं है। अंशों को केवल सोल्फा अक्षरों के साथ गाया जाता है। यह अपनी लय उत्कृष्टता और इसमें प्रयुक्त जाति पद्धति के लिए उल्लेखनीय है । यह, नृत्य संगीत के क्षेत्र से संबंधित एक संगीत शैली है। कुछ जातिस्वरमों में,

पल्लवी और अनुपल्लवी को जातिय के अनुरूप गाया जाता है। तथा स्वर और जति को मिलाने के लिए चारण गाए जाते हैं। रागमलिका जतिस्वरम भी हैं।

वर्णम- वर्णम, कर्नाटक संगीत की एक ऐसी संगीत शैली है तथा कीर्तन, कृति, जावली, तिल्लाना आदि जैसी संगीत शैली की तरह है। वर्णम का कोई प्रतिपक्ष नहीं है। वर्णम, उच्च किस्म का एक संगीत शिल्पकारी की सुन्दर रचना है जो उन रागों की सभी विशेषताओं का एक मिश्रण है जिसमे इसकी रचना की जाती है। इस शैली को वर्णम कहा जाता है क्योंकि प्राचीन संगीत में वर्णन नामक स्वर समूह पद्धतियों को वर्ण कहा जाता है जो अपने पाठ से परस्पर सम्बद्ध हैं। वर्णम गायन में अभ्यास से संगीतकार को प्रस्तुतिकरण में निपुणता प्राप्त करने और राग, ताल और भाव पर नियंत्रण करने में मदद मिलती है। गायक को ध्वनि में उत्तम प्रशिक्षण और वादक को तकनीक पर उत्तम निपुणता प्राप्त होती है। इस शैली के साहित्य में बहुत कम शब्दों और स्वरों के समूह का इस्तेमाल किया जाता है। अशं का विषय या तो भक्ति अथवा श्रृंगार होता है । वर्णम दो किस्म के होते हैं। एक को तान वर्णम और दूसरे को पद वर्णम कहा जाता है। हालांकि पहले वाला सांगीतिक शैली का है जबकि दूसरा विशुद्धः नृत्य शैली का होता है । वर्णम में दो अंग अथवा खण्ड होते हैं जिन्हें पूर्वांग कहा जाता है जिसमें पल्लवी, अनुपल्लवी और मुक्तायी स्वर तथा उत्तरांगा अथवा एतुकादायी में चरनम और चर्ण स्वर सम्मिलित होते हैं। तान वर्णम की भांति सभी अंगो के लिए पाद वर्णम का साहित्य अथवा शब्द होते हैं, जो केवल पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरनम् के लिए साहित्यम् है । वर्णम सभी प्रमुख रागों को मिलाकर रचित किया जाता है तथा सभी प्रमुख तालों में अधिकांश छोटे-मोटे राग होते हैं। पश्चिमीरियम, अदिप्पाय्या, सोन्ती वैंकटसुब्बैय्या, श्याम शास्त्री, स्वाति तिरूनाल सुब्रामण्यम् अय्यर, रामानंद श्रीनिवास अयंगर और मैसूर वासुदेवाचार वर्णमों के प्रमुख रचनाकार थे।

कीर्तनम- कीर्तनम की उत्पत्ति चौदहवीं शताब्दी के लगभग उत्तरार्ध में हुई थी। यह सरल संगीत में रचित साहित्य की भक्ति भावना के लिए जाना जाता है, कीर्तनम भक्ति भाव से ओत-प्रोत है । यह सामूहिक गायन और अलग-अलग प्रस्तुतिकरण के लिए उपयुक्त है । पन्द्रहवीं शताब्दी के तालापाकम रचियेता, खण्डों, पल्लवी, अनुपल्लवी और चरणों के साथ कीर्तनम के प्रथम रचियेता थे । सामान्यतः दो से अधिक चरण होते हैं जिनमें सभी का संगीत एक समान होता है। सभी महत्वपूर्ण पारम्परिक रागों में रचित और सरल तालों के लिए कीर्तनम उच्चतम शैली का आत्मा-विभोर करने वाला संगीत हैं।

कृति-कृति कीर्तन से विकसित हुआ रूप है। यह रूप अत्यंत विकसित संगीत शैली है। कृति संरचना में सौन्दर्य उत्कृष्टता की उच्चतम सीमा प्रस्तुत की जाती है । इस शैली में सभी समृद्ध और विविध रागभावों को

प्रस्तुत किया जाता है। जो कि संगीत शैली में कृति की उत्पत्ति के बाद ही संगीत संरचना में निश्चित शैली की संभावना बनाती है। पल्लवी, अनुपल्लवी और चर्णम कृति के न्यूनतम और अनिवार्य अंग है । पहले पल्लवी गाया जाता है, उसके बाद अनुपल्लवी तथा पल्लवी के साथ समापन होता है। उसके बाद चरनम् गाया जाता है तथा उसे समाप्त करने से पहले पल्लवी के साथ जोड़ा जाता है। कर्नाटक संगीत त्रिमूर्ति का आभारी है जिसने कि कृति के रूप में निबद्ध संगीत के क्षेत्र में ऐसा स्मरणीय योगदान दिया। सभी विद्यामान रागों में और सभी प्रमुख तालों में कृतियां हैं। एक संगीत के रूप में कृति की हिन्दुस्तानी संगीत के ध्रुपद के साथ बड़ी मिलती-जुलती विशेषताएं हैं। मुत्तुस्वामी दिक्षितार ने ध्रुपद शैली में बहुत सी कृतियों की रचना की है।
इसके अलावा कृतियों में सुन्दरता के लिए बहुत से आलंकारिक अंग भी जोड़े जाते हैं। ये हैं: (क) चित्तास्वर अथवा सोल्फा पथों का एक सेट जिसे अनुपल्लवी और चरणम् के अन्त में गाया जाता है (ख) स्वर- साहित्य- चित्तस्वर के लिए एक उपयुक्त साहित्य की आपूर्ति की जाती है । (ग) माध्यमकला साहित्य-कृति का एक महत्तवपूर्ण भाग, (घ) सोलकत्तु स्वर- चित्तस्वर के समान है इसमें स्वरों के साथ-साथ जातियाँ होती हैं, (ड.) संगति-एक संगीत विषय में भिन्नताएं जो धीरे-धीरे विकसित होती हैं। (च) गमक- धातु गमकाओं से भरपूर होती है, (छ) स्वराक्षर धातु मातु अलंकार जहां स्वर और साहित्य एक समान होते हैं, (ज) मनु-प्रवाल सुन्दरता कृति के साहित्य में दो अथवा तीन भाषाओं के शब्द सम्मिलित होते है, (झ) शास्त्रीय सुन्दरता, जैसे कि प्रास, अनुप्रास, यति और यमक भी बहुत सी भाषा आकृतियों में प्रमुख रूप से सम्मिलित होते हैं।

पद- पद, तेलुगु और तमिल में विद्वत्तापूर्ण रचनाएँ है । यद्यपि ये मुख्यतः नृत्य रूपों में रचित होती हैं तथापि ये संगीत कार्यक्रमों में भी गाई जाती हैं जिसके कारण संगीत में उत्कृष्टता और सुन्दरता पैदा होती है । पद में भी खण्ड, पल्लवी और चरण खंड भी होते हैं। संगीत धीमा और उत्कृष्ट होता है । संगीत का प्रवाह स्वाभाविक होता है तथा शब्दों के बीच सतत सन्तुलन होता है तथा पूरे नृत्य में संगीत को बनाए रखा जाता है। विषय में माधुर्य भक्ति होती है जिसे बहिर श्रृंगार तथा अन्तर- भक्ति श्रृंगार के साथ पदों में गाया जाता है। नायकों का चरित्र नायक तथा सखी, भगवान, जीवात्मा तथा गुरु का प्रतिनिधित्व करता है। जो उसके संत गुरु की सलाह से भक्त को मुक्ति का पथ दिखाता है। बहुत से रागों में उनके भावों को उपयुक्त रागों द्वारा प्रतिबिंबित किया जाता है। गाए जाने पर पद उस राग का उत्कर्ष प्रस्तुत करते हैं जिसमें वह रचित है । विशिष्ट रसभाव के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय राग, जैसे कि आनन्दभैरवी, सहाना, नीलमबारी, अहीरी, घन्टा, मुखरी, हुसैनी, सुरति, सौराष्ट्म और पुन्नागावार कुछेक उल्लेखनीय हैं जिन्हें पदों के लिए चुना जाता है । क्षेत्ररजना पदों के सर्वश्रेष्ठ रचयिता हैं।

जवाली- जवाली, सुगम शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र से संबंधित एक रचना है। इसे सामूहिक संगीत कार्यक्रमों और नृत्य समारोहों दोनों में गाया जाता है। जवाली उन आकर्षक लयों के लिए लोकप्रिय हैं जिनमें वे रचित हैं । पदों के विपरीत ईश्वरीय प्रेम प्रदर्शित करते हैं। जवाली ऐसे गीत हैं जो अवधारणा और भावना की दृष्टि से इंन्द्रियगत हैं। ये सामान्यतः मध्यम कला में रचित होते हैं । इन शैलियों में भी, नायक, नायिका और सखी ही विषयतस्तु होते हैं, किन्तु साहित्य की कोई दोहरी व्याख्या नहीं होती। जवाली की आकर्षक और मोहक लय उनके आकर्षण को और बढ़ा देती हैं। परज, काफी, बेहाग, झिनझोटी, तिलंग आदि जैसे देशज रागों का भी इन रचनाओं में प्रयोग किया गया है। जवाली तेलुगु, कन्नड़ और तमिल में रचित होती हैं। यह शैली हिन्दुस्तानी संगीत की ठुमरियों के समान ही है ।

तिल्लाना- हिन्दुस्तानी संगीत में तराना के अनुरूप ही तिल्लाना भी एक लघु और संकुचित शैली है। यह मुख्यतः एक नृत्य शैली है, किन्तु तेज और आकर्षक संगीत के कारण इसे कभी-कभी अन्तिम अंश में शामिल किया जाता है। यह सामान्यतः जतियों के साथ शुरू होते हैं। तिल्लाना के नाम मे लयात्मक अक्षर, ति-ला-ना सम्मलित है। यह संगीत शैली की एक सजीवतम शैली है क्लाहा जाता है कि इसकी उत्पत्ति अठारहवीं शताब्दी में हुई । तिल्लाना का साहित्य संस्कृत, तेलुगु और तमिल में मिलता है ।[1] साहित्य के योगदान के साथ लयात्मक सोल्फा अक्षरों की मिलावट से तिल्लाना शैली की सुन्दरता में वृद्धि करता है। तिल्लाना में संगीत तुलनात्मक रूप से धीमी गति का होता है जो नृत्य प्रयोजनार्थ होता है। पल्लवी और अनुपल्लवी के अन्तर्गत जातियाँ सम्मिलित हैं तथा चरन में साहित्य, जतियाँ और स्वर सम्मिलित हैं । रामनाथपुरम् श्रीनिवास आयंगर, पल्लवी शेषाय्यर और स्वाति तिरुनाल तिल्लानाओं के कुछेक प्रमुख रचयिता हैं।

पल्लवी- यह रचनात्मक संगीत की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शाखा है। मनोधर्म संगीत की इस शाखा में ही संगीतज्ञों के लिए अपनी रचनात्मक प्रतिभा, विचारात्मक दक्षता और संगीत प्रबुद्धता प्रदर्शित करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त होता है। पल्लवी शब्द का विकास तीन शब्दों यथा पदम, जिसका अर्थ, शब्द है लयम, जिसका अर्थ समय है और विनयासम, जिसका अर्थ भिन्नताएं हैं, से हुआ है। पल्लवी के लिए चुने गए शब्द या तो संस्कृत, तेलुगु अथवा तमिल से हो सकते हैं तथा किसी भी विषय पर हो सकते है, यद्यपि भक्ति को प्राथमिकता दी जाती है। न तो साहित्य और न ही संगीत पूर्व- संरचित है।

गायक को साहित्य, राग और ताल चुनने की छूट होती है। दो भाग प्रथमागम और द्वितीयागम, सक्षिप्त विराम की अवधि द्वारा बँटे हैं, जिन्हें पदगर्भम कहा जाता है, जैसे-जैसे संगीत भिन्नताएं विकसित होती है तथा बढ़ती

1. दुबे, डॉ. एच. एन./दक्षिण भारत का बृहत् इतिहास/ पृष्ठ-27

हुई जटिलता के स्तरों से आगे बढ़ती हैं साहित्यम् को दोहराया जाता है । हिन्दुस्तानी संगीत के ख्याल में कर्नाटक संगीत की पल्लवी के साथ काफी समानता है। विकास के ख्याल में कर्नाटक संगीत की पल्लवी के साथ काफी समानता है। कल्पना स्वरों को विकास के भिन्न-भिन्न चरणों के बाद संगतियों, अनुलोम तथा प्रतिलोम (दोहरी और चौगुनी गतियों में तथा इसके विपरीत में विषय का गायन) सहित पल्लवी के साथ गाया जाता है। कभी-कभी कल्पना स्वर, रागमलिका पल्लवी प्रस्तुत करने के लिए भिन्न रागों में गाए जाते हैं । 'निरावल' का शाब्दिक अर्थ समायोजनों द्वारा भराव है। संगीत पद्धति में, इसका अर्थ संगीत विषय में सुधारों के साथ लयात्मक गायन के अन्दर साहित्य के गायन की कला से है । कृति से साहित्य स्वरूप की एक उपयुक्त पंक्ति चुनी जाती है तथा संगीत संबंधी सुधार ताल के प्रत्येक चक्र में किया जाता है। पल्लवी में, निरावल आवश्यक है और कृतियों में एक विकल्प है ।[1]

तानम- यह राग अल्पना की एक शाखा है। यह, मध्यमाकला अथवा मध्यम गति में राग अल्पना है। आकर्षक पद्धतियों का पालन करते हुए, संगीत का लयात्मक प्रवाह, तनम गायन को राग का सर्वाधिक आकर्षक भाग बना देता है। 'अनन्तम' शब्द का प्रयोग संगीत प्रणालियों के साथ विलय करने के लिए किया जाता है। संक्षेप में, कर्नाटक संगीत की विशेषता इसकी राग पद्धति है जिसकी अवधारणा में 'पूर्णसंगीत' अथवा आदर्श निहित होता है तथा यह अत्यंत विकसित और जटिल ताल पद्धति है जिसने इसे अत्यंत वैज्ञानिक और रीतिबद्ध तथा सभी दृष्टिकोणों से अनूठा बना दिया है। कर्नाटक संगीत में हिन्दुस्तानी संगीत के घरानों की तरह ही प्रस्तुतीकरण की शैली में स्पष्ट सीमांकन देखने को नहीं मिलता, फिर भी हमें भिन्न-भिन्न शैलियां देखने को मिलती हैं।

*****

1. दुबे, डॉ. एच. एन./दक्षिण भारत का बृहत् इतिहास/ पृष्ठ-30